ज्ञानवैभवधारी
सातिशय श्रुतज्ञानके धनी
भावि तीर्थाधिनाथ की
भेंट करानेवाले चैतन्यरत्न
प्रशममूर्ति धन्यावतार
पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन को उनके
१०२वी मंगलकारी
जन्मजयंती महोत्सव प्रसंग पर
शत शत वंदन !!

(पूज्य) बहिनश्री गणधरके जीव हैं, इसलिये भविष्यमें बारह अंगकी रचना करेंगे। बहिनश्रीकी नजर बहुत सूक्ष्म थी। वर्तमान समाजको वास्तवमें क्या जरूरत है यह उनके ज्ञानमें बहुत आया है। उनके वचनामृत बाहर में आये तब गुरुदेव फ़िदा हो गये! आफ़रीन हो गये! एक–एक बोलमें एकमात्र अध्यात्मका अमृत भरा है ऐसा कहेंगे तो चलेगा। ...भावनाका विषय प्रस्थापित करके तो उन्होंने जैसे फैंसला ही कर दिया है। मुमुक्षुओंको तो जैसे एक रत्न ही हाथमें आ गया, ऐसा कहेंगे तो चलेगा।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४१ : अंक-२१४, वर्ष-२०, अगस्त-२०१५

ज्येष्ठ कृष्ण ४, मंगलवार, दि. ७-६-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन-२, गाथा-४ से ६

अब, उसके सामने गुलांट खाता है, देखो ! मिथ्यादर्शन से मोहित जीव चौरासी में भटकता है। समझ में आया ? अन्तिम ग्रैवेयक, नौवें ग्रैवेयक (गया) 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पे निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो' नौवें ग्रैवेयक में, दिगम्बर साधु पंचमहाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे वह मूढ़ जीव है। अट्ठाईस मूलगुण वह राग है। उसमें हित मानता है। मिथ्याश्रद्धा से मोहित प्राणी मूढ़ है, उसे आत्मा के ज्ञान और आनन्दकी खबर नहीं है। ऐसे वह पालने से मरकर चार गतिमें भटकनेवाला है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसके सामने अब बात है, लो !

दु:खका कारण मिथ्यादर्शन कहा। उसमें जरा भी सुख नहीं है। उसमें-मिथ्याश्रद्धा में कहाँ से (होगा) ? लोग मिथ्याश्रद्धा की व्याख्या ही संक्षिप्त करते हैं। समझ में आया ? हम देव-शास्त्र-गुरु को मानते हैं। कुदेव-कुगुरु को नहीं मानते। हम पंच महाव्रत का पालन करते हैं... परन्तु यह पंच महाव्रत राग है, ये मेरा है उन्हें पालन करूँ और (वे) रखने योग्य है, उस भाव को ही मिथ्यादर्शन कहा है। सुनो ना ! उस जीव को मिथ्यादृष्टि कहा है, वह अज्ञानी है। भले दिगम्बर साधु त्यागी होकर बैठा हो परन्तु उसके पंच महाव्रत के.. है तो कहाँ उसके पास ? परन्तु ऐसा कोई दया, दान, राग की मन्दता का भाव यह मुझे हितकर है, मुझे लाभदायक है, वह मिथ्यादर्शन से मोहित है। जिसे मिथ्यादर्शन का जहर चढ़ा है। समझ में आया ? उसे जरा भी आत्मा का अमृत का स्वाद नहीं होता।

'मोक्षसुख का कारण : आत्मध्यान।' देखो ! यह कहा। व्यवहार-फ्यवहार नहीं-ऐसा कहते हैं, देखो !

जइ वीहउ चउगइगमणु तउ परभाव चएवि।
अप्पा झायहि णिम्मलउ जिम सिवसुक्ख लहेवि।।५।।

ओ..हो..! संसार में परिभ्रमण करने का कारण एक मिथ्यादर्शन भाव कहा। तब मुक्ति के उपाय के लिए एक आत्मध्यान कहा। बात गुलाँट खाती है। समझ में आया ? यह शुभ-अशुभ विकल्प, राग यह बाहर की चीज स्वरूप में नहीं है। इसे हितकर मानना ही मिथ्यादर्शन और मोह (है)। मिथ्यादर्शन से मोहित जीव है। जबकि आत्मा के मोक्ष का कारण, आत्मा के धर्म का कारण कौन ? कि **'जो चारों गतियों के भ्रमण से भयभीत है...'** फिर से लिया। चार गति... पहले समुच्चय बात थी। पहले भाषा में समुच्चय थी, यह चार गति खुली की। समझ में आया ? इतना था यह, समुच्चय था।

यहाँ चार गति का भय (कहकर) खुला कर दिया। जिसे स्वर्ग में अवतरना है, यह दया, दान, व्रत, भक्ति पालन करे... वह भी दु:खरूप है। चार गति में स्वर्ग में अवतरित होना, वह दु:खरूप है। कितने ही कहते हैं भाई! अपने अभी पुण्य करो, व्रत पालो, स्वर्ग में जाऊँगा

फिर भगवान के पास जाऊँगा... धूल में भी नहीं जाए। यहाँपर अभी तो आत्मा का अनादर करता जाता है, भगवान का निषेध करता है। भगवान ने कहा–तेरा आत्मा अन्दर आनन्द है। इस क्रियाकाण्ड में–दया, दान, व्रत के परिणाम से तुझे आत्मा का हित नहीं है–ऐसा भगवान ने कहा, वह तो यहाँ मानता नहीं। समझ में आया ? इस प्रकार जिसे चार गति के दुःख का त्रास, भय है, भय... आहा..हा...!

‘**चारों गतियों के भ्रमण से भयभीत है...**’ समझ में आया ? वह एक बात आती है, उस बैल की। एक बैल था और उसे नाल करने के लिए लुहार के यहाँ ले गये थे। दुःख तो बहुत होता है। उसमें बैल खो गया तो ढूँढ़ने के लिए लुहार के यहाँ आये। (वहाँ जाकर पूछते हैं), यहाँ नहीं ? (लुहार कहता है) परन्तु यहाँ नहीं आयेगा। तू कहाँ ढूँढ़ने आया ? किसी न किसी के खेत में देखने जा तो ठीक है। यहाँ नाल के लिए आया था, वहाँ फिर से आयेगा ? नाल करते हैं या नहीं ? पैर बाँधे हों, लोहे से ऐसा करके नाल करते हैं। उसमें आठ दिन–पन्द्रह दिन में बैल खो गया। यहाँ आया है क्या ? परन्तु यहाँ नहीं आयेगा। यहाँ तो नाल करे, वहाँ आता होगा ? इसी प्रकार चौरासी की गति में जिसे त्रास (लगा) है, वह फिर से गति में अवतरित नहीं होता। उसके लिए यह बात करते हैं, कहते हैं। समझ में आया ? तब क्या करना ?

‘**भयभीत हुआ हो तो परभावों को छोड़ दे।**’ एक सिद्धान्त, बहुत संक्षिप्त, अत्यंत संक्षिप्त। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, यह पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, तप और जप–यह सब राग परभाव है, परभाव है। इसे श्रद्धा में से छोड़। यहाँ से बात शुरु की है। समझ में आया ? यदि चार गति से भय पाया हो (तो) ‘**परभावों को छोड़ दे।**’ बहुत संक्षिप्त बात। यहाँ उसका अर्थ है कि जो लोग ऐसा कहते हैं न कि भाई! व्यवहार करते–करते निश्चय प्राप्त होगा। यहाँ कहते हैं कि जो व्यवहार है, वह परभाव है, उसे छोड़ तो आत्मा प्राप्त होगा। आहा..हा..! समझ में आया ? यही पुकार करते हैं। व्यवहार करो... व्यवहार करो... भाई! पहले व्यवहार करो, दया पालो, संयम पालो, इन्द्रिय दमन करो। धूल में भी तुम्हारा पालन राग है। सुनो ना !

मुमुक्षु :– विभाव की ठीक से सम्भाल रखो।

पूज्य गुरुदेवश्री :– हाँ, सम्भाल रखो। विभाव की सम्भाल रखो (ऐसा) उसका अर्थ हुआ या नहीं ? समझ में आया या नहीं ? वह कल भी कोई आया था, भाई! ‘जयपुर’वाला वह कहता था कि अब गड़बड़ तो बाहर चली है। वह हमारे स्थानकवासी में बड़ा विद्वान है–‘गति’ कैसा? वे यह ‘आत्मधर्म’ पढ़ते हैं, स्थानकवासी हैं, बड़े से बड़ा पण्डित है, वह यह पढ़ता है कि निश्चय के बिना व्यवहार–फ्यवहार नहीं होता। सभी साधु अभी ऐसा कहते हैं। अब निश्चय की बात करने लगे हैं। निश्चय से मुक्ति होती है, यह बात सत्य परन्तु व्यवहार के बिना नहीं होती–यह बात भी सत्य है। इसलिए परभाव का अभाव करना–ऐसा नहीं। समझ में आया ? व्यवहार अर्थात् परभाव। व्यवहार का अर्थ दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प उठता है, वह सब परभाव है। वह व्यवहार अर्थात् परभाव, उस परभाव के बिना नहीं चलता, निश्चय उसके बिना नहीं होता। (ऐसा माननेवाले) मूढ़ है। यहाँ तो पहले से ही कहा है, देखो! क्या कहते हैं ? आहा..हा...!

'**परभाव चहवि**' '**चहवि**' अर्थात् छोड़ दे। तेरी दृष्टि में यह मिथ्यात्वभाव पड़ा है। यह परभाव हो, कुछ–कुछ राग की मन्ता हो, कषाय की मन्दता हो, तो अपने... वह कहता था, अशुभ में से शुभ और शुभ में से शुद्ध (होंगे)। बातें तो चलने लगी हैं, (ऐसा वह) कहता है। धूल में भी नहीं होता। शुभ को छोड़ तो लाभ होता है। शुभ में से शुद्धता होती है ऐसा नहीं। समझ में आया ? यह क्या कहा ? देखो ! पढ़ो।

'**जइ वीहउ चउगइगमणु तउ परभाव चएवि।**' परभाव की व्याख्या क्या ? जितना भगवानआत्मा ज्ञातादृष्टा का भण्डार है, उससे (विपरीत) जितना एक तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बाँधे, वह परभाव, परभाव, परभाव है। समझ में आया ? यदि तुझे चार गति के दुःख का भय लगा हो तो परभाव को छोड़। '**परभाव चहवि**' छोड़ दे परभाव। यह परभाव माने तो न! सावद्ययोग प्रत्याख्यान, फिर ऐसा कहता था। सावद्ययोग का प्रत्याख्यान होता है। सुनो ना! शुभभाव के प्रत्याख्यान उस समय छूटता नहीं, इसलिए ऐसा करते हैं। दृष्टि में तो समस्त भाव का निषेध है। समझ में आया ? सावद्ययोग के प्रत्याख्यान में अशुभ छूट जाता है और शुभ दृष्टि में से छूटता है परन्तु अस्थिरता में से नहीं छूटता, इतना सावद्ययोग का त्याग करता है। दृष्टि में से तो सब पाप और पुण्य परिणाम का त्याग है। अस्थिरता के नहीं छूटते इसलिए सावद्ययोग का इस प्रकार त्याग किया जाता है। '**कर्मे हणं ते**' सामायिक, सावद्ययोग और प्रत्याख्यान। उसे एक पत्र दिया था न ? एक पत्र दिया था। सामायिक 'महावीर' की सामायिक का हम बहुत प्राचर करते हैं। कहा, 'महावीर' की सामायिक को पहचानना तो पड़ेगा। सामायिक किसे कहना ? यह बैठा ऐसा करके, णमो अरिहंताणं बोले वह सामायिक ? मिथ्यादर्शन की बड़ी शल्य तो अन्दर पड़ी है।

मुमुक्षु :– बोलता है...

पूज्य गुरुदेवश्री :– बोले उसमें क्या ? राग मुझे लाभदायक, यह शरीर मुझे है, इसका अर्थ यह हुआ। राग मुझे लाभदायक है (ऐसा माननेवाला) इस शरीर को जीव मानता है। समझ में आया ? एक कहता था, शरीर और जीव भिन्न है। अरे..! शरीर और जीव भिन्न है इसका अर्थ – शरीर, कर्म, राग, पुण्य–पाप, यह सब शरीर है। भगवान आत्मा तो चिदानन्द ज्ञातास्वरूप है। राग के कण को भी अपना माने, वह बहिरआत्मा, शरीर को ही आत्मा मानता है। समझ में आया ? क्योंकि राग का लक्ष्य जाएगा, शरीर की क्रिया पर और वह क्रिया होगी उसे मानेगा कि इसकी क्रिया कर सकता हूँ।

'**परभाव चहवि**' कहते हैं, यदि तुझे चार गति का डर लगा हो (तो) परभाव छोड़। देखो! पहले त्याग की बात की। यह त्याग। किसका त्याग ? इस शुभ–अशुभभाव का त्याग। घरबार कब अपने में आ गये थे तो उनका त्याग करे ? घरबार तो उनके घर में बाहर ही पड़े हैं। यहाँ कहाँ अन्दर में आ गये हैं ? यह (गति) थी, उसकी पर्याय में उसकी बात करते हैं । उसकी पर्याय में पर्यायरूप से पकड़ा हुआ परभाव, उसे द्रव्यदृष्टि से तू छोड़। आहा..हा...! समझ में आया ? यह कहेंगे, देखो! छोड़कर फिर करना क्या ? यहाँ तो अभी परभाव को छुड़ाकर पूरी लम्बी व्याख्या है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी परभाव है। समझ में आया ? दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम परभाव है। उसे छोड़ ! वह गति का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं।

'**अप्पा झायहि णिम्मलउ**' अब तब करना क्या ? यह तो नास्ति हुई। '**निर्मल आत्माका ध्यान कर...**' लो! यह मोक्ष का मार्ग। भगवानआत्मा निर्मल... निर्मल क्यों लिया ? कि दूसरी अशुद्ध पर्याय मलिन दिखती है न ? उस अशुद्धता को छोड़–ऐसा कहा। अशुद्ध जो विकारी पर्याय है, पुण्यादि, वह तो छोड़ने योग्य है। तब अब (कहते हैं) आत्मा का ध्यान (कर)। परन्तु आत्मा कैसा है, यह समझे बिना ध्यान किसका करेगा ? समझ में आया ? अनादि अनन्त सच्चिदानन्द स्वसत्ता से विराजमान पूर्णानन्द का नाथ केवलज्ञान सत्ता से भरपूर तत्त्व है। अकेला केवलज्ञान से भरा हुआ तत्त्व है। ऐसे

भगवान आत्मा को, जिसमें अनन्त निर्मल गुण पड़े हैं, निर्मल गुण पड़े हैं। मलिनता का त्याग, निर्मल गुणों से भरे हुए भगवान, उसका ध्यान उसकी पर्याय में कर–ऐसा कहते हैं।

'**अप्पा**' यह वस्तु है। '**अप्पा**' यह वस्तु है–निर्मल आत्मा। ध्यान कर, यह पर्याय है। क्या कहा ? मोक्ष के सुख का उपाय, यह मोक्ष का मार्ग। आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति, यह उसका ध्यान करना, वह मोक्ष का मार्ग है। ध्यान में दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों आ गये हैं। अपनी सत्ता शुद्ध सत्तावाला पदार्थ, अशुद्ध मलिनता का जहाँ त्याग (हुआ), वहाँ शुद्ध सत्ता का आदरना, उस शुद्ध सत्ता का आदर करना, ध्यान करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। अब इसमें व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है, इसका निषेध हो जाता है। अरे...! परन्तु शास्त्र में मोक्ष के मार्ग दो कहे हैं। मोक्ष का मार्ग दो–निश्चय और एक व्यवहार। अरे! चल... चल...! मोक्षमार्ग दो कैसे ? मार्ग तो एक ही है। आत्मा का ध्यान करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है।

भगवान आत्मा शुद्ध सहजानन्द की मूर्ति, उसमें सावधानपने श्रद्धा–ज्ञान और शान्ति में उसे आश्रय बनाना, वह एक ही मुक्ति का मार्ग है। संवर, निर्जरा का मार्ग यह एक ही आत्मा की ओर का ध्यान, वह संवर, निर्जरा का मार्ग है। समझ में आया ? भाई! पाँच हाथ बाहर में नियम लिया, लो! परन्तु धूल में, नियम किस काम का तेरा ? नियम, अन्दर में हाथ जोड़ कि पुण्य–पाप के दोनों विकल्प छोड़ने जैसे हैं; निर्विकल्प आत्मा का ध्यान वह आदरणीय है। उसने वास्तविक प्रत्याख्यान या पच्चक्खाण किया, बाकी तो अज्ञानरूप प्रत्याख्यान है। समझ में आया इसमें ? देखो!

'**अप्पा झायहि**' बहुत संक्षिप्त में बात (की)। आत्मा, उसे पहचान। आत्मा अर्थात् पुण्य–पाप रहित, एक समय की पर्याय जितना नहीं। भगवान पूर्णानन्द प्रभु, जिसके अन्तर्मुख के अवलोकन से संसार की कहीं गन्ध नहीं रहती। ऐसे आत्मा का निर्मल... वापस वह निर्मल... निर्मल है न ? उस मलिन पर्याय को छोड़ने का कहा। निर्मल आत्मा त्रिकाली का ध्यान कर। लो! यह मोक्ष का माग। इसमें सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण और ये कब, कहाँ आयेंगे ?

मुमुक्षु :– ध्यान की पर्याय भी सामायिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री :– वह सामायिक है। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु के सन्मुख देखकर एकाग्र होने का नाम सामायिक है, उसका नाम प्रौषध है, उसका नाम प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान है, उसका नाम सम्यग्दर्शन–ज्ञान और चारित्र है। आहा..हा...! समझ में आया ?

'**णिम्मलउ अप्पा जायहि**' '**निर्मल आत्माका ध्यान है...**' भगवान विराजते है न! कहते हैं। पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि कर, उसका ज्ञान कर, और उसमें स्थिर हो–इन तीनों को यहाँ ध्यान में समाहित कर लिया है। यह मोक्षमार्ग–सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्षमार्गः यह शब्द तत्त्वार्थसूत्र का है। इन तीनों को यहाँ ध्यान में समाहित कर दिया है। आहा...हा...! और तीनों को आत्मा शुद्ध पवित्र, उसकी ओर का अवलोकन, श्रद्धा–ज्ञान और शान्ति (हुए) उसे यहाँ ध्यान कहते हैं। उस निर्मल आत्मा का ध्यान ही मोक्ष का मार्ग अथवा मोक्षसुख का कारण है। वह पूर्ण सुख का कारण है। समझ में आया ?

दूसरे प्रकार से कहें तो यहाँ जो वह शुभभाव आदि था न ? वह आत्मध्यान नहीं था, वह परध्यान था। समझ में आया ? साधु के अट्ठाईस मूलगुण वह परभाव, परध्यान है; वह आत्मध्यान नहीं। वह परध्यान था, परभाव का ध्यान था। अद्भुत बातें, भाई! भगवान आत्मा, अपने शुद्ध निर्मल स्वभाव को अन्तर्मुखदृष्टि करके स्थिरता–ध्यान करे, एक ही आत्मा के पूर्ण आनन्दरूपी मोक्षसुख का, यह एक ही उपाय है। देखो, इसमें दो मोक्षमार्ग हैं–ऐसा नहीं है। इस आत्मा का ध्यान, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ?

यह तो अभी आगे आयेगा। यहाँ तो पहले से सिद्ध करते जाते हैं।

शेष अंश अगले अंकमें...

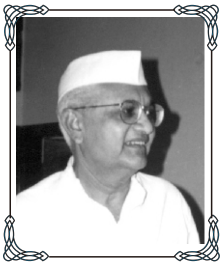

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रन्थ के वचनामृत-२९३ पर हुआ भाववाही प्रवचन

दि. ८-७-१९८३, प्रवचन क्रमांक-१३८ (विषय - विधि)

प्रश्न :- ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं, और सम्यक् सन्मुख जीव भी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं, उन दोनोंकी विधि का प्रकार एक ही है अथवा कोई अन्तर है ?

उत्तर :- ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं। उन्हें आत्माका लक्ष्य तो हुआ है, आत्मा लक्ष्यमें है, और उसमें एकाग्रताका विशेष पुरुषार्थ करने पर विकल्पोंसे छूटकर निर्विकल्प होते हैं। स्वसन्मुख जीवको तो अभी आत्माका लक्ष्य नहीं हुआ, आत्मा लक्ष्यमें नहीं आया, उसने धारणाज्ञानसे जाना है, (वह) प्रत्यक्ष नहीं हुआ। विकल्पपूर्वक आत्माका लक्ष्य धारणारूप हुआ है, उसे अन्तर पुरुषार्थ उग्र होते-होते सविकल्पता छूटकर निर्विकल्पता होती है। (इस प्रकार निर्विकल्प होनेकी विधिका प्रकार एक होने पर भी ज्ञानीयोंने वेदनसे आत्माको जाना है और स्वसन्मुखतावाले जीवने धारणासे-आनन्दके वेदन बिना-आत्माको जाना है)। २९३.

२९३. प्रश्न है। ये दो-तीन प्रश्न हैं, ९२, ९३, ९४ ये सब सविकल्प और निर्विकल्पता के विषय पर हैं। '**ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं,...**' वैसे तो यह जानने का विषय है। अध्यात्म के परिणाम का प्रश्न है इसलिये रस आये, लेकिन ऐसे जानने का विषय है। परिणाम का विषय है न ? '**ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं और सम्यक् सन्मुख जीव भी...**' अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। एक सम्यग्दृष्टि है उन्हें निर्विकल्प दशा होकर शुद्धोपयोग उत्पन्न होता है, अनेक बार होता है, बारंबार होता है। तो वे सविकल्पमें से निर्विकल्प दशा में आते हैं, स्थिर उपयोग में आते हैं। और अनादि का मिथ्यादृष्टि सम्यक् सन्मुख होकर वह जीव भी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होता है। तो इन दोनों की विधि का प्रकार एक ही है कि कोई अन्तर है ? ऐसा प्रश्न निकाला है। पूछा तो सहीना ! विधि में कोई अन्तर नहीं होता।

प्रथम शुद्धोपयोग होता है, फिर उसी गुणस्थान में-चतुर्थ गुणस्थान में फिर से शुद्धोपयोग होता है, लंबे काल के बाद। फिर पंचम गुणस्थान में उससे कम समय में शुद्धोपयोग होता है, तत्पश्चात् मुनिदशा में प्रतिक्षण शुद्धोपयोग होता है। उसमें कहीं भी रीत बदलती नहीं। जिस विधि से स्वकार्य होता है उस एक ही विधि से तीनों काल सर्व जीवों को, सर्व साधकों को एक ही प्रकार से होता है। किसी भी काल में उसमें फेरफार नहीं होता। काल अनुसार मोक्षका मार्ग बदलता नहीं। तीनों काल एक ही है। 'एक होय त्रण काळमां परमार्थनो पंथ।'

उत्तर :- कहते हैं कि '**ज्ञानी...**' तो फिर अब इन दोनों में अन्तर क्या है ? क्योंकि दोनों की दशा अलग है न ? एक मिथ्यादृष्टि है वह पुरुषार्थ करके अनुभव में आता है। एक ऐसी भूमिका में है कि जहाँ उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं वर्तता। और एक जीव ऐसा है कि जो शुद्धोपयोग में आता है कि जिसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान वर्तता है। सम्यग्दर्शन वर्तता है और उसे ज्ञानधारा भी प्रगट हुयी है। प्रत्यक्ष है, प्रगट परिणति है। इन दोनों के बीच जो Stage का अन्तर है वह अन्तर तो है। भले ही विधि में

फ़र्क़ न हो लेकिन उसकी दशा का जो फर्क़ है वह अन्तर है ही। उसकी सूक्ष्मता क्या है उसे उत्तर में बताया है। प्रस्तुत विषय इतना है। इन दोनों Stage में अन्दर अनुभव में आनेवाले को अन्दर में परिणाम की सूक्ष्मता किस प्रकार चलती है और कार्य होता है, इतना विषय यहाँ कहते हैं। 'गुरुदेव' ने अनेक अनुभव के सूक्ष्म विषय की चर्चा की थी, बहुत चर्चा की थी। उसका रस हो, उस सम्बन्धित प्रश्न निकाले तो सभी उत्तर आते थे। पर उसका रस होना चाहिये।

'**ज्ञानी सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होते हैं। उन्हें आत्मा का लक्ष्य हुआ है,...**' उन्हें आत्मा लक्ष्य में है, प्रगटरूप से लक्ष्य में है। सीधा-सीधा अनुसंधान है। चलते परिणमन में उन्हें आत्मा दूर नहीं है। वास्तव में तो ज्ञानी आत्मा में ही खड़े हैं। प्रवचन चलते थे तब ऐसा निरूपण आता था कि सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा लड़ाई के काल में लड़ाई में नहीं खड़े होते हैं। ठीक ! लड़ाई में तो नहीं खड़े हैं, अपितु लड़ाई करने का जो विकल्प है उसमें भी नहीं खड़े हैं। सीधे कहाँ स्थापित किया है ? कि वे आत्मा में खड़े हैं। कहाँ खड़े हैं ? स्वयं के आत्मा में खड़े हैं। तब ऐसा कहा जाय कि खाते हैं फिर भी खाते नहीं, बोलते हैं फिर भी बोलते नहीं, चलते हैं फिर भी चलते नहीं। इसका क्या कारण है ? कि उसमें उस विकल्प में और उस क्रिया में उनके अस्तित्व का वेदन नहीं करते। उनको स्वयं के अस्तित्व का वेदन नहीं है। जिन्हें आत्मा में वेदन चलता है, उन्हें आत्मा से बाह्य तत्त्व में स्वयं का वेदन नहीं है। अस्तित्वरूप जो वेदन है वह तो स्वभाव ही वेदन में आता है। स्वयं के अस्तित्वरूप अपना ही स्वभाव वेदन में आता है। राग और संयोग होने पर भी, स्वयं के अस्तित्व का वेदन उसमें नहीं होता। यह बहुत ही बड़ा अन्तर है।

मुमुक्षु :- स्पष्ट दिखता है कि ज्ञानी रणभूमि में खड़े हैं।

पूज्य भाईश्री :- वहाँ से नहीं देखना, ऐसा कहते हैं। वहाँ-से नहीं देखना। उनके वेदन को ग्रहण करना सीखो। उनके वेदन को पहचानना सीखो। उनकी अन्दर की स्थिति पहचाने तो उनका पुरुषार्थ देखकर नतमस्तक हो जाय। ज्ञानीयों ने ज्ञानीयों को वंदन किया है। 'करे कर जोरी बनारसी वंदन'। कहाँसे निकाला ? उनकी दशा को पहचानकर वह बात है। उनकी अन्तरंग दशा ज्ञान में आती है, तब उन्हें (ऐसा होता है), ओ..हो..! उन्हें नमस्कार हो जाता है। इसप्रकार उनकी पहचान अलग चीज़ है। यहाँ से ऐसा करते हैं और ऐसा करते हैं और ऐसा करते हैं, उसमें भूल है या नहीं ? यह शास्त्र के संगत है या नहीं ? फलाना है। यह तेरा काम नहीं, यह काम तेरा नहीं। वह देखने जायेगा तो तू रखड़ जायेगा।

एक मुमुक्षु ने 'मुंबई' में प्रश्न किया था। 'श्रीमद्‌जी' के विषय में प्रश्न किया था। 'श्रीमद्‌जी' ने ऐसा लिखा है तो यह क्षयोपशम की भूल है या नहीं ? एक मुमुक्षु थे। ऐसा विकल्प क्यों आता है ? वे ज्ञानी थे ऐसा माना है ? ज्ञानी तो थे। ज्ञानी थे तो फिर उनकी भूल देखने का विकल्प तुझे क्यों आया ? ज्ञानी को ज्ञानीरूप देखने से उनके प्रति भक्तिभाव उल्लसित होता है। इसके बजाय उनकी भूल देखने के विकल्प में तुझे भक्ति कहाँ-से आयेगी ? तेरी भक्ति का तो उसमें खून हो जायेगा। बात खत्म हो गयी। इसलिये यह एक ऐसी परिस्थिति है कि पहचान के पंथ पर जाना चाहिये। ऐसा विषय है। उसमें बहुत सुन्दर बात ली है। बहुत सूक्ष्म बात लेते हैं। प्रश्न भले ही जानने का है लेकिन पहचान के दृष्टिकोण से थोड़ा इसके अन्दर प्रयोजन है वह इतना है कि पहचान करने की विधि क्या है ?

'**ज्ञानी सविकल्प द्वारा...**' अर्थात् ज्ञानी को विकल्प चलता हो फिर उसके द्वारा '**निर्विकल्प होते हैं। उन्हें आत्माका लक्ष्य हुआ है...**' उन्होंने अपना घर देखा है। अपना स्वरूप उन्होंने देखा है। देखा है अर्थात् उनके ज्ञान में प्रगट वर्तता है कि मैं ऐसा हूँ। और उसमें अन्तर्मुख कैसे होते हैं, उसकी रीत भी उनके अनुभव में आ गयी है। घर देखा है और घर में जाने का रास्ता भी देखा है। दोनों बात है। ज्ञानी ने निज घर भी देखा है और घर में जाने का

रास्ता भी देखा है । दोनों बात है। वे अनजाने नहीं हैं। जो सम्यक् सन्मुख है वह अभी अनजान है। इतना फ़र्क़ है उसमें। लेकिन अनुभव होता है दोनों को एक ही विधि से, विधि बदलती नहीं। ऐसा कहना है।

'**उन्हें आत्माका लक्ष्य हुआ है,...**' लक्ष्य में दोनों बात आ गयी। पूर्णता की पूर्ण भावना है, शुद्धात्मा का आश्रय करने का जो प्रकार है, यह प्रकार उन्हें अनुभवगम्य है और अपना ऐसा स्वरूप है, वह उन्हें प्रगटरूप से वर्तता है। उनके श्रद्धान में और ज्ञान में वह प्रगट है। ज्ञानी को श्रद्धा-ज्ञान में आत्मा प्रगट है-ऐसा कहा जाता है। इसलिये उन्हें लक्ष्य हुआ है ऐसा संक्षेप में कहा जाता है। आत्मा लक्ष्य में है।

'**और उसमें एकाग्रताका विशेष पुरुषार्थ करने पर...**' ऐसे श्रद्धान-ज्ञान सहित एकाग्रता का पुरुषार्थ विशेष करने पर, विशेष होने पर, '**विकल्पोंसे छूटकर निर्विकल्प होते हैं।**' पुरुषार्थ वर्धमान होता है तब उस पुरुषार्थ की भूमिका में तीव्र-मन्द, तीव्र-मन्द परिणाम होते हैं। पुरुषार्थ के परिणाम मन्द होते हैं तब सविकल्प दशा रहती है, ज्ञानी को पुरुषार्थ के परिणाम होते ही निर्विकल्प दशा हो जाती है। विकल्प छूट जाते हैं अर्थात् नया विकल्प होना बंद हो जाता है। वैसे तो प्रतिक्षण विकल्प तो छूटते ही हैं लेकिन नया विकल्प उत्पन्न हो तब पूर्व का विकल्प छूटा, वह निश्चय से कहा नहीं जाता। इसलिये नया विकल्प उत्पन्न नहीं हो तब वह विकल्प छूट गया ऐसा कहने में आता है। तब विकल्प छूटकर निर्विकल्प होता है।

'**स्वसन्मुख जीवको तो अभी आत्माका लक्ष्य नहीं हुआ,...**' ऐसा जो प्रगट लक्ष्य वर्तता है, वैसा प्रकार नहीं है। वह लक्ष्य अलग है और यहाँ जो उसे स्वसन्मुख होकर (आत्मा) खयाल में आया है, वह लक्ष्य अलग है। दोनों को यहाँ एक लक्ष्य में नहीं गिना है। उसे लक्ष्य नहीं हुआ है, ऐसा कहा। यदि ज्ञानी को आत्मा का लक्ष्य है तो उसे अनुभव होने पूर्व उसका लक्ष्य नहीं हुआ, ऐसा कहने में आता है। खयाल में आया है, उसे लक्ष्य नहीं हुआ है, ऐसा कहते हैं। '**स्वसन्मुख जीवको तो अभी आत्मा का लक्ष्य नहीं हुआ,...**' लक्ष्य नहीं हुआ अर्थात् उसे प्रगटरूप से लक्ष्य में वर्तता नहीं। आत्मा लक्ष्य में आया नहीं इसलिये प्रगट लक्ष्य में वर्तता नहीं। खयाल में है। उसे यहाँ लक्ष्य नहीं हुआ, ऐसा कहा। उसे यहाँ धारणा में डाल दिया। क्योंकि परोक्ष है न ? वह खयाल परोक्ष है। यहाँ प्रत्यक्ष लक्ष्य है। यहाँ लक्ष्य है वहाँ प्रत्यक्ष है।

'**उसने धारणाज्ञानसे जाना है,...**' वहाँ उसे परोक्षरूप से खयाल आया है कि आत्मा ऐसा है। ऐसा उसे परोक्षरूप से खयाल में आया है। अभी प्रत्यक्ष नहीं हुआ। ऐसा शब्दप्रयोग किया है कि उसे प्रत्यक्ष नहीं हुआ। ज्ञानी को प्रत्यक्ष हुआ है। निर्विकल्प शुद्धोपयोग में तो प्रत्यक्ष हुआ है, उपयोग से प्रत्यक्ष हुआ है और लब्ध में प्रत्यक्ष वर्तता है। इसलिये उसे लक्ष्य में है ऐसा कहने में आता है। लब्ध में प्रत्यक्ष वर्तता है। इसीलिये तो उसे ऐसा कहने में आता है कि उसे शुद्धनय से केवलज्ञान वर्तता है। इच्छादशा से केवलज्ञान वर्तता है, शुद्धनय से उसे केवलज्ञान वर्तता है, श्रद्धा अपेक्षा से केवलज्ञान वर्तता है। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। इच्छादशा को चारित्र में लिया है। इच्छादशा यानी भावना। ज्ञान का अनुभव है वह शुद्धनय में जाता है। शुद्धोपयोग में केवलज्ञान स्वभावी आत्मा को अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान से वेदता है-अनुभव करता है, उसे केवलज्ञान शुद्धनय से वर्तता है ऐसा कहने में आता है।

'श्रीमद्जी'ने यह शब्दप्रयोग किया है। श्रद्धा से केवलज्ञान वर्तता है, शुद्धनय से केवलज्ञान वर्तता है, इच्छादशा से केवलज्ञान वर्तता है। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रसे केवलज्ञान होगा ऐसा नहीं, परन्तु केवलज्ञान वर्तता है ऐसा लिया है। अन्दर में है कि नहीं ? वर्तना माने होना। यहाँ वर्तना माने केवलज्ञान प्रगटरूप से हुआ है, ऐसा नहीं। लेकिन वर्तना अर्थात् होना। हमें वर्तता है, ऐसा कहना है। हमें है अर्थात् हमें वर्तता है।

श्रद्धा के विषय से ऐसा जाना है कि मेरी आत्मा केवलज्ञानस्वरूप है। ज्ञान से भी ऐसा अनुभव किया है कि

मेरी आत्मा केवलज्ञानस्वरूप है और चारित्र में भी मेरी आत्मा केवलज्ञानस्वरूप है, ऐसा स्थिर होकर अनुभव किया है। मात्र ज्ञान का विचार करके अनुभव नहीं किया है लेकिन ऐसी आत्मा में स्थिर होकर अनुभव किया है। इसलिये इच्छादशा ले ली। भावना को साथ में ले लिया। इस भावना का प्रकार अलग है। उसमें भिन्नता नहीं है। भावना और भावना का विषय जैसे भिन्न-भिन्न नहीं है, उसे भावना कहने में आता है। इसलिये वर्तता है.. वर्तता है... वर्तता है... ऐसा लिया।

ऐसा स्वसन्मुख जीव को नहीं है। स्वसन्मुख जीव को वैसा प्रकार नहीं है, इसलिये उसे लक्ष्य नहीं हुआ, लक्ष्य में नहीं आया। मात्र उसने खयाल में लिया है। परोक्षरूप से जाना है अर्थात् धारणा में लिया है अर्थात् उसने धारणारूपसे खयाल में लिया है, ऐसा कहने में आता है। दोनों ज्ञान में बहुत अन्तर है।

वैसे तो स्वसन्मुख जीव को जैसा खयाल में आया है, अनुभव में आता है तब मिलान करनेपर ऐसा ज्ञात होता है कि जैसा खयाल में आया था, वैसा प्रत्यक्ष अनुभव में आया। जैसा परोक्ष खयाल में आया था, वैसा ही प्रत्यक्ष अनुभव में आया। लेकिन वह खयाल का ज्ञान और अनुभवज्ञान, इस प्रत्यक्ष-परोक्ष के बीच बहुत अन्तर है। यह बतलाना है। दोनों के बीच बहुत अन्तर है। एक में अभी अनन्तानुबंधी कषाय वर्तता है, एक में मिथ्यादर्शन और अज्ञान वर्तता है और अभी अनन्त भवभ्रमण का छेद नहीं हुआ। जबकि अनुभव होनेपर अनन्त भवभ्रमणका एक ही क्षण में छेद हो जाता है। इतनी उसमें शक्ति है। अतीन्द्रिय अनुभव हुआ की एक क्षण में अनन्त भवका छेद हो गया। एक क्षण के अनुभव में इतनी शक्ति है।

'**धारणाज्ञानसे जाना है, (वह) प्रत्यक्ष नहीं हुआ। विकल्पपूर्वक आत्माका लक्ष्य धारणारूप हुआ है,...**' विकल्प से आत्मा का लक्ष्य हुआ है, परोक्षज्ञान में लक्ष्य हुआ है। पहले ऊपर कहा था, लक्ष्य नहीं हुआ, यहाँ कहते हैं कि लक्ष्य हुआ है। नहीं हुआ, उसमें इसप्रकार से नहीं हुआ। और हुआ है उसमें इसप्रकार से हुआ है। इसप्रकार दोनों की मर्यादा है, यह जाननी चाहिये। '**विकल्पपूर्वक आत्माका लक्ष्य धारणारूप हुआ है, उसे अन्तरपुरुषार्थ उग्र होते-होते सविकल्पता छूटकर निर्विकल्पता होती है।**' क्या कहते हैं ? कि जिसे आत्मा का लक्ष्य हुआ है, उस लक्ष्य के सद्भाव में पुरुषार्थ की परिणति उत्पन्न हो, पुरुषार्थ जागृत हो तो पुरुषार्थ जब उग्र होता है तब अनुभव होता है। पुरुषार्थ जागृत हो और पुरुषार्थ उग्र हो, तब उसे अनुभव होता है। पुरुषार्थ में आगे बढ़ने पर उसे अनुभव होता है। इतनी बात है। फिर जो खयाल में आया है उसमें तो दूसरा कोई फ़र्क़ नहीं है। मिथ्यात्व गलता जाता है। मिथ्यात्व का जो श्रद्धान का विपर्यास है वह गलता जाता है और पुरुषार्थ की दिशा बदल गयी है। लक्षमें आने पर पुरुषार्थकी दिशा बदल गयी है। इसलिये उसे स्वसन्मुख कहा है। यहाँ स्वसन्मुख लिया है न ? पुरुषार्थ जागृत हुआ है वह उग्रता धारण करे, Power फटे पुरुषार्थ का तब उसे अनादि से चल रही मिथ्यात्व की श्रृंखला टूट जाती है। एक क्षण के लिये उस साँकल का मकोड़ा टूट जाता है। साँकल अखण्ड (है)। विकल्प ऐसे चलते हैं कि जैसे एक मकोड़ा में दूसरा मकोड़ा पीरोकर जैसे साँकल पूरी दिखती है, भिन्न-भिन्न मकोड़े होनेपर भी, इसप्रकार विकल्प की अखण्ड साँकल है। इस साँकल को एकबार वह तोड़ देता है। अनादि से चल रही जो विकल्प की साँकल-श्रृंखला उसे कहते हैं, उसका पहलीबार छेद होता है। एकबार वह टूट गयी फिर विकल्प की जात भी बदल गयी। फिर उसे अनन्तानुबंधी के विकल्प नहीं है। भले ही लड़ाई का विकल्प है फिर भी अनन्तानुबंधी नहीं है, कोई अशुभ विकल्प है तो अनन्तानुबंधी नहीं है, शुभ विकल्प है तो भी अनन्तानुबंधी नहीं है। और यह श्रृंखला टूटने से पहले आत्मा का विकल्प भी अनन्तानुबंधी का है। इसप्रकार दोनों की जाति में अन्तर है। कहे जाते हैं दोनों ही विकल्प।

कोई बार ज्ञानी और अज्ञानी दोनों मन्दिर में भक्ति करते हो। भगवान की जिनेन्द्र की भक्ति करते हो तो

अज्ञानी की भक्ति बहुत दिखे, ठीक ! रस है न, रागरस है साथ-साथ। ऐसे भक्तिरस के रसिक जीव होते हैं। ऐसी भक्ति दिखे.. ऐसी भक्ति दिखे... किसीको ऐसा लगे कि ज्ञानी से तो अज्ञानी की (भक्ति अधिक है)। यह ज्ञानी हैं और यह अज्ञानी है, लेकिन भक्ति तो इसकी अच्छी है। ठीक ! भाई ! तुझे ऐसे भक्ति का नाप नहीं आयेगा। उस परिणाम में जाति का अन्तर है। ज्ञानी जैसे जिनेन्द्र को पहचानते हैं, वैसे राग का रसिक जीव जिनेन्द्र के स्वरूप को पहचानता नहीं। ऐसा है। बिना पहचान कितनी भक्ति आये ? रागरस में चढ़ जाय और चाहे जैसी मन-वचन-काया की चेष्टा हो, इसलिये भक्ति बढ़ गयी है और इनकी ऐसी चेष्टा नहीं दिखाई देती इसलिये इनकी भक्ति कम हो

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रन्थ के वचनामृत-२९३ पर हुआ भाववाही प्रवचन, दि.९-७-८३ (विषय : विधि)

२९३ वचनामृत है। इस बोल में मिथ्यादृष्टि जीव स्वसन्मुख होकर और निर्विकल्प (होता है) और सम्यग्दृष्टि जीव सविकल्प दशा छोड़कर निर्विकल्प होता है। इसप्रकार दोनों को निर्विकल्प होना बनता है। तब विधि का प्रश्न किया है कि विधि में फ़र्क है या दोनों की विधि एक ही समान है ?

कहा कि, विधि तो एकसमान है, पुरुषार्थ की पद्धति एकसमान है, लेकिन दोनों का स्तर भिन्न-भिन्न है। एक अनादि मिथ्यादृष्टि है और जिसे परोक्षज्ञान में आत्मा का लक्ष्य हुआ है। एक सम्यग्दृष्टि है कि जिसे आत्मा अनुभूत है, अनुभूति में आ गया है। अनुभूत है यानी अनुभूति में आ गया है और प्रत्यक्ष उसकी अनुभूति की ज्ञानधारा भी उसे वर्तती है। इसलिये अभी भी उसके श्रद्धा-ज्ञान में प्रगटरूप से आत्मा वर्तता है। इसप्रकार दोनों की वर्तमान स्थिति में बहुत अन्तर है। परन्तु जहाँ तक विधि का सवाल है, वहाँ विधि का प्रकार समान है। इसलिये कोष्टक में यह बात ली है।

‘**(इस प्रकार निर्विकल्प होनेकी विधिका प्रकार एक होने पर भी...)**’ यह स्पष्टीकरण किया है। मूल में ‘गुरुदेव’ के यह शब्द नहीं हैं। स्पष्टीकरण किया है। क्योंकि प्रश्न यहाँ विधि का है कि ‘**इस प्रकार निर्विकल्प होनेकी विधिका प्रकार एक होने पर भी ज्ञानीयोंने वेदनसे आत्माको जाना है और स्वसन्मुखतावाले जीवने धारणा से-आनन्दके वेदन बिना-आत्मा को जाना है)।**’ जाना है, ऐसा दोनों में लिया है। ऊपर लक्ष्य हुआ है, ऐसा दोनों में लिया है। लक्ष्य भी ज्ञान की पर्याय है।

ज्ञानी को अनुभवपूर्वक लक्ष्य में है, प्रगट वेदनपूर्वक लक्ष्य में है और स्वरूप सन्मुखतावाले ने मात्र निर्णय से परोक्षज्ञान में लक्ष्य में लिया है। स्पष्टीकरण करे तो परोक्षज्ञान की धारणामें दो प्रकार हैं कि कोई जानता है, शास्त्र द्वारा आत्मा का स्वरूप इसप्रकार है, ऐसा जानता है तो भी लक्ष्य होता नहीं। क्योंकि परलक्ष्यीज्ञान में उसकी जानकारी प्राप्त होती है कि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, गुण-गुणी भेद से, द्रव्य-गुण-पर्याय से, उत्पाद-व्यय-ध्रुव से आत्मा का स्वरूप ऐसा ही है। लेकिन आत्मा का ऐसा स्वरूप है, उसमें मेरा ऐसा स्वरूप है, ऐसा परोक्षज्ञान में भी लक्ष्य बंधना वह दूसरी बात है। परलक्ष्यी ज्ञान में ऐसा जानना सम्भवित है, बहुतों को ऐसा जानना होता है, लेकिन लक्ष्य नहीं होता और परलक्ष्यीज्ञान में मात्र धारणा हो तो उसे लक्ष्य हुआ कहने में (नहीं आता)। धारणाज्ञान

में लक्ष्य नहीं हुआ है। धारणाज्ञान में जाना है, लेकिन धारणाज्ञान में लक्ष्य नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- लक्ष्य में क्या कहना चाहते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- लक्ष्य एक ऐसा विषय है कि जो ज्ञानमें-से हटता नहीं। उसे लक्ष्य कहने में आता है।

जैसे एक आदमी को निर्धारित स्थानपर पहुँचना है। यहाँ-से Station जाना है, ऐसा निर्धार किया, ऐसा निर्णय किया। तो चलकर जाये या किसी भी सवारी में जाये, साईकिल पर जाये, मोटरसाईकिल पर जाये, मोटर में जाये। चाहे जितने टेढ़े-मेढ़े मोड़ आये, चाहे जितना Traffic हो, दूसरे विचार आये, उपयोग चलने में लगे, दूसरे विचार में उपयोग लगे, फिर भी ज्ञान में लक्ष्य है वह बदलता नहीं। लोग कहते हैं न ? हम लोग बात करते हुए जा रहे थे लेकिन रास्ता नहीं भूले। यहाँ तो एक ही बार उसका उपयोग चला कि यहाँ-से घर जाना है। चलते-चलते पुरी दुनिया के विचार किये और बातें भी की, लेकिन लक्ष्य है इसलिये जो निर्धारित रास्ता है उसीपर चलना होता है। इसका कारण क्या ?

मुमुक्षु :- यह लक्ष्य लब्ध में आ जाता है ?

पूज्य भाईश्री :- उसका लक्ष्य है वह लब्ध में भी है और उसका कभी-कभी उपयोग भी होता है। बिलकुल उपयोग नहीं होता ऐसा भी नहीं है। उसका बारंबार उपयोग होता है। लक्ष्य में जो चीज होती है उसका बारंबार उपयोग होता है। इसप्रकार लक्ष्य में आनेवाले को दूसरे औदयिक भाव होते हैं तब वह मनुष्योचित परिणाम करता है। मनुष्यगति हो तो मनुष्योचित परिणाम करता है, तिर्यंच गति हो तो तिर्यंचगति के उचित उसके परिणाम होते हैं। देव-नारकी के हो तो उस गति के उचित होते हैं। सम्यग्दर्शन चारों गतियों में होता है न ? फिर भी, मैं वैसा नहीं हूँ। मैं तो अनन्त-अनन्त अपरिमित शक्ति का दल हूँ, अनन्त सामर्थ्य सत्त्व मैं हूँ। ऐसा उसका लक्ष्य हुआ है वह मिटता नहीं। उपयोग छटककर उस पर-लक्ष्य के विषय पर जाता है। रास्ते में बिलकुल उपयोग नहीं जाये ऐसा नहीं है। कभी-कभी तो होता है। उसकी सूक्ष्मता का अभ्यास किया हो तो सब खयाल में आये ऐसा विषय है। यहाँ तो इतना ही विषय है।

मुमुक्षु :- पहले ध्येय बाँधना चाहिये।

पूज्य भाईश्री :- बिना ध्येयके तो बँधने का तो सवाल ही नहीं। ध्येय बाँधा हो तो लक्ष्य बाँधना वह अलग भूमिका है, भिन्न भूमिका है। वह तो जब निर्णय में आता है तब है। लेकिन बाँधनेवाले को क्या है कि एक दृढ़ निश्चय होता है कि मुझे यही साध्य है। पूर्णता, परिपूर्ण आत्मा की निष्कलंक दशा, शुद्ध दशा, निर्दोष दशा ही मुझे साध्य है। इसलिये उसकी जो ध्येय के दृढ़ निश्चयपूर्वक की भावना और लगनी से प्रतिकूल भावों में उसको जागृति रहती है कि यह नहीं। यह नहीं चाहिये। यह करना नहीं। करना हे वह अलग है। साध्य है वह अलग है, साधना है वह यह नहीं है। इतना है। उसमें भी जब स्वरूप सन्मुख की स्थिति उत्पन्न होती है तब आत्मा की पहचान होती है, आत्मा का निर्णय होता है तब यह स्वरूप सन्मुख की दशा उत्पन्न होती है।

अब जितने शास्त्र पढ़ते हैं, आत्मा के प्रतिपादक ऐसे जो शास्त्र, सत्शास्त्र, जितने जीव उसका अध्ययन करते हैं, जितने जीव उसका अभ्यास करते हैं, वह सब आत्माका निर्णय तो करते हैं। क्योंकि वहाँ बुद्धि को Apply की है। लेकिन जिन्होंने निर्णय किया है, उन सभी का निर्णय यथार्थ है अथवा लक्ष बँधा है ऐसा नहीं है। परोक्ष दृष्टिसे दोनों निर्णय धारणा में जाते हैं। परोक्ष है न ! परोक्ष ज्ञानका निर्णय है अर्थात् ओघसंज्ञा से वह निर्णय हुआ है। फिर भी एक में लक्ष्य हुआ है और एक में लक्ष्य नहीं हुआ है, ऐसी स्थिति बनती है।

लक्ष्यवाला जीव स्वरूप सन्मुख होकर पुरुषार्थ की उग्रता आनेपर निर्विकल्प दशा को प्राप्त करता है। जिसे

लक्ष्य नहीं हुआ है, उसे सच्चा निर्णय नहीं हुआ होने से, निर्णय का ज्ञानबल वर्तता नहीं होनेसे और आत्मा उस निर्णय में पहचानने में नहीं आया होनेसे उसकी अनन्य रुचि प्रगट नहीं होती। रुचि की स्वरूप सन्मुखता की ओर श्रेणी प्रारंभ होनी चाहिये, वह नहीं होती। इसलिये रुचि अनुयायी वीर्य, जो पुरुषार्थ उत्पन्न होना चाहिये वह पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता। वह ऐसी शिकायत करता है कि आत्मा तो खयाल में आया है लेकिन पुरुषार्थ नहीं चलता। क्या शिकायत करता है ? Complain करता है कि आत्मा खयाल में तो आया है कि आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है लेकिन अभी मेरा पुरुषार्थ चलता नहीं। लेकिन भाई ! आत्मा ऐसा है, तेरा आत्मा ऐसा है, मैं ऐसा हूँ इसप्रकार लक्ष्य में आया नहीं। आये तो पुरुषार्थ प्रगट हुए बिना रहे नहीं। ऐसा है।

स्वरूप सन्मुखता का काल कोई लंबा नहीं है। महिना-दो महिना, चार-छह महिने का है। उसे बरसों नहीं लगते। वह प्राप्त कर लेता है। क्योंकि उसका पुरुषार्थ शुरू हो गया है। मात्र उग्रता आने का सवाल है। और वह उग्रता भी आ ही जाती है। क्योंकि निर्णय में आया है वह विषय प्रत्यक्ष है। यह सहज प्रत्यक्षता है। उसके ज्ञान में परोक्षपना है लेकिन ज्ञान का विषय ज्ञानस्वभावी, सहज प्रत्यक्ष ज्ञानस्वभावी आत्मा है। इसलिये उसकी उग्रता आये बिना रहे नहीं, ऐसा है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होने का कारण रुचि नहीं है ?

पूज्य भाईश्री :- रुचि नहीं है। रुचि नहीं है उसका कारण उसे पहचान नहीं हुई। वास्तविक पहचान नहीं हुई।

मुमुक्षु :- पहचान की है, ऐसा तो कहते हैं।

पूज्य भाईश्री :- वह पहचान सच्ची नहीं है। वह निर्णय नहीं है, लेकिन एक कल्पना है। मन के संग राग की मुख्यता में एक कल्पना हुई है। निर्णय तो ज्ञान की प्रधानता में, ज्ञान की मुख्यता में, ज्ञान के आधार से होता है, राग के आधार से नहीं होता। मोक्षमार्ग का कार्य मूल में ही ज्ञान के आधार से होता है। मोक्षमार्ग-वीतरागमार्ग का कार्य मूल में ही राग के आधार से शुरू नहीं होता। और अनादि से जीव राग की मुख्यता में, राग की प्रधानता में वर्तता है। राग के आधार से परिणमता है। वह करवट बदले तो (मोक्षमार्ग में आये)।

१७-१८ गाथा के प्रवचन में 'गुरुदेवश्री'ने बहुत अच्छी बात कही थी। कुदरती रविवार को जाना नहीं हुआ और १७-१८ गाथा चली। फिर दूसरे रविवार को अन्दर एकान्त में गया। ('गुरुदेव'ने पूछा), पिछले रविवार को नहीं आये थे, क्यों ? उन दिनों बिमारी चल रही थी। मौसम ऐसा था इसलिये घर में करीब-करीब सब बीमार थे। (कहा), ऐसा था। आपको याद किया था। (मैंने पूछा), क्या था ? तो कहा, १७-१८ गाथा बहुत अच्छी चली। फिर वह विषय चला। (मैंने पूछा), खास बात क्या थी उसमें ?

तो कहा, देखिये ! बहुत ही संक्षेप में यह बात कही। यह बहुत मुद्दे की बात है। अनादि से जीव का ज्ञानगुण और रागगुण... दो शक्ति है न ? ज्ञानशक्ति और चारित्रशक्ति। राग की जो पर्याय है। अनादि से ज्ञानगुण और चारित्रगुण दोनों परिणमते हैं। ज्ञान जाननेरूप परिणमता है तो चारित्र रागरूप परिणमता है। इन दोनों गुणों का अनादि से धारावाहीरूप से परिणमन चलता है। है तो अनन्त गुण का परिणमन, लेकिन जहाँ कार्य करना है उसमें विपरीत कार्य होता है और राग के आधार से होता है। इसलिये ऐसा कहा, दो ऊँगली ऐसे की। यह दो गुण जो परिणमते हैं, उसमें 'मैं राग हूँ' ऐसा अनादि से जीव का परिणमन है। मिथ्यादृष्टि जीव का 'मैं राग हूँ' ऐसे राग का एकत्वरूप परिणमन अनादि से है। वह 'मैं ज्ञान हूँ' इसप्रकार करवट बदले, पलटा मारे, 'मैं ज्ञान हूँ', तो उसका कार्य होता है।

यह मुद्दा है। लो ! बहुत सुन्दर बात है।

मुमुक्षु :– दोनों कार्य चल रहे हैं ?

पूज्य भाईश्री :– दोनों गुण परिणमते हैं। अनन्त गुण परिणमते हैं, वैसे ये दो गुण परिणमते हैं, लेकिन ये दोनों मुख्य गुण हैं। उसमें जीव, 'मैं राग हूँ' (ऐसे परिणमता है)। धर्म के क्षेत्र में शास्त्र स्वाध्याय के राग में 'मैं राग हूँ' इसप्रकार परिणमन होता है, तब तक शास्त्र स्वाध्याय का कोई गुण नहीं है। और दूसरी कोई भी क्रिया करे। ज्ञान की क्रिया में और त्याग की क्रिया में, ज्ञान सम्बन्धित राग या त्याग सम्बन्धित राग, वह 'राग मैं हूँ' ऐसी प्रधानता में परिणमता है, तब तक अनादि से उसकी जो पद्धति है, उस विपरीत रीत का उसने त्याग नहीं किया। उसमें फेरफार नहीं किया। उसी रीति में वह पड़ा है। ऐसा कहना है।

उसे प्रथम ज्ञानक्रिया में 'मैं ज्ञान हूँ' इसप्रकार ज्ञान की प्रधानता में ज्ञान के आधार से ज्ञान द्वारा, ज्ञान में ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करना चाहिये। तो उसे स्वरूप सन्मुखता उत्पन्न हो। अर्थात् उसे परोक्षज्ञान में, विचारज्ञान में भी आत्मा का लक्ष्य हो और लक्ष्य हो तो पुरुषार्थ प्रगट हो।

यहाँ लक्ष्य के दो भेद किये। प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है ऐसे ज्ञानी का लक्ष्य और एक जिसे अनुभव नहीं हुआ ऐसे स्वरूप सन्मुख मिथ्यादृष्टि का लक्ष्य। दोनों लक्ष्यवाले हैं। और दोनों लक्ष्यवाले होनेसे दोनों को अनुभव होता है। एकको मिथ्यात्व छूटकर सम्यक् होने में अनुभव होता है और एक को सम्यक् होने के बाद फिर से बारंबार स्वानुभव होना, ऐसा निर्विकल्प शुद्धोपयोग प्रगट होता है। इसलिये इसप्रकार दोनों के लक्ष्य में प्रत्यक्ष और परोक्षता का अन्तर होने पर भी, दोनों पुरुषार्थ की उग्रता में स्वानुभव की दशा को प्राप्त करते हैं।

मुमुक्षु :– १७–१८ गाथा में क्या लेना है ?

पूज्य भाईश्री :– १७–१८ गाथा में वैसे शास्त्रमेंसे कोई बात नहीं ली थी। नैसर्गिकरूप से एक स्मृति हुई कि यह बहुत ही अच्छा प्रवचन चल रहा है और ये रविवार को आते हैं और आये नहीं है। इसलिये याद आयी। मुद्दे की बात थी। याद किया था ऐसा कहा, इसलिये ऐसा लगा कि कोई मुद्दे की बात लक्ष्य में आयी है। तो वह क्या बात है ? उसमें विशेष बात क्या चली ? यह है। बहुत ही संक्षेप में है। ऐसे करवट बदले, इतनी ही देर है जीव को। राग पर बैठ गया है। 'मैं राग हूँ' ऐसे बैठा है, वह 'मैं ज्ञान हूँ' (इसप्रकार करवट बदले)। जैसे कोई सवारी बदलता है। वैसे जीव ज्ञान पर सवार होता है, तब उसे आत्मा अनुभव में आता है। अनुभव करवाने की यह गाथा है। बहुत सुन्दर विषय है। २९३ (वचनामृत पूरा हुआ)।

नवीन प्रकाशन

पूज्य भाईश्री शशीभाई के 'अनुभवप्रकाश' ग्रंथ पर धारावाही प्रवचन 'अनुभवप्रकाशना किरणो' भाग–३, 'राजहृदय' भाग–१६ (गुजराती में) पूज्य बहिनश्री की आगामी जन्मजयंति के प्रसंग पर प्रकाशित किये जायेंगे।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अगस्त–२०१५) का शुल्क श्रीमती मीताबेन शैलेषभाई देसाई परिवार, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ग्रन्थमें से मिथ्या अभिप्राय का स्वरूप तथा द्रव्यलिंगी की भूल विषयक वचनामृत

परलक्षी क्षयोपशमज्ञान अटकने का स्थान

(अज्ञानी जीवको) ज्ञानका थोड़ा क्षयोपशम होवे और थोड़ा विकास भी होता जाए तो वह उसमें ही रुक जाता है; मैं थोड़ा समझदार तो हूँ और पहलेकी अपेक्षा शान्ति भी तो बढ़ रही है, इस तरहसे मैं आगे बढ़ तो रहा हूँ – ऐसे सन्तोष मानकर अटक जाता है। १८९.

❖

(जो) क्षयोपशम में बैठे हुए, द्रव्य (आत्मा) ऐसा है.... ऐसा है – ऐसे द्रव्य की बातें कर रहा है, वह तो दूर बैठकर द्रव्य की बात कर रहा है। (आत्मा में बैठकर द्रव्य का स्वरूप बताना यथार्थ है।) ३०३.

❖

(उघाड़ पर जिसकी दृष्टि है, उसको) क्षयोपशम बढ़ता जाता है तो साथ–साथ अभिमान भी बढ़ता जाता है। ४४८.

❖

जैसे उधर के पण्डितों को लगता है कि हम सब जानते हैं; वैसे वांचनकार हो जावे और उघाड़ हो जाए तो (लोग) 'हम समझते हैं'–(ऐसे अहम् में) अटक जाते हैं। – ऐसे वह उघाड़ रुकने का (अटकने का) साधन हो जाता है। पण्डितों का संसार तो शास्त्र कहा है न ! ४८८.

❖

कई लोग संसार की दुकानदारी छोड़, शास्त्र की दुकानदारी में फँस गए। ५४२.

❖

(अध्यात्म की) ऐसी बात सुनने को मिल जाने से (कितने ही लोगों को) संतोष हो जाता है कि दूसरे लोगों को ऐसी बात नहीं मिली (किन्तु) अपने को तो मिली है न ! – ऐसे अधिकता मानकर जीव संतुष्ट हो जाता है। (नीची दशावालों की ओर दृष्टि रखना वह तो स्वयं के लिए ही एक बड़ा भारी नुकसान का कारण है।) ५७६.

द्रव्यलिंगी की भूल

(द्रव्यलिंगी की भूल :) द्रव्यलिंगी होकर ग्यारह अंग तक पढ़ लेते हैं, परंतु त्रिकाली चैतन्यदल में अपनापन स्थापित नहीं करते; – यही भूल है, दूसरी कोई भूल नहीं। ६०.

❖

द्रव्यलिंगी को त्रिकाली के प्रति उत्साह नहीं आता; उत्साह आता तो 'त्रिकाली' हो जाता। ८३.

❖

प्रश्न :– द्रव्यलिंगी इतना स्पष्ट जानकर (भी) क्यों त्रिकाली में अपनापन नहीं करता ?

उत्तर :– उसको सुख की जरूरत नहीं है; क्योंकि उसको एक समय की उघाड़–पर्याय में संतोष है, सुख लगता है; तो त्रिकाली को क्यों पकड़े ? (जिसको वर्तमान पर्याय में संतोष होता है, उसको दर्शनमोह तीव्र होता है। और जहाँ संतोष होता है वहाँ ही अटकना होता है, वहाँ दुःख भी नहीं लगता। अतः ऐसी स्थिति में त्रिकाली स्वभाव के प्रति पुरुषार्थ नहीं होता है।) १२१.

❖

द्रव्यलिंगी को वस्तु का (साधारण) माहात्म्य तो आया, लेकिन वस्तु परोक्ष ही रही, प्रत्यक्ष नहीं हुई। (परोक्ष ज्ञान में वस्तु–स्वरूप यथार्थ जाननेपर भी अनंत प्रत्यक्ष वस्तु की प्रत्यक्षता का जोर आये बिना प्रत्यक्ष अनुभव नहीं आता।) २६३.

❖

द्रव्यलिंगी को मंद कषाय की मुख्यता है और द्रव्य की गौणता है। (व्यवहाराभास में सर्वत्र ऐसा होता है।) ६२६.

❖

द्रव्यलिंगी मुनि ने वीर्य बहुत उलटा लगाया है। वह जितनी जोर से उलटा पड़ा है, उससे अधिक वीर्य सम्यक् होने में लगाना पड़ेगा, तभी सम्यक् होगा। ६३०.

धन्य अवतार

बहिन विदेहसे आयी हैं। उन्हें तो असंख्य अरब वर्षका जातिस्मरणज्ञान है। असंख्य अरब वर्षकी बात, कलकी आज दिखे इस प्रकार दिखती है। ...आत्मजातिका ज्ञान होना वह यथार्थ जातिस्मरण है-अनंत-अनंत गुणोंका नाथ उसका ज्ञान अंतरमें होना वह (परमार्थ) जातिस्मरण है। ५१.

❖

ता.१९-८-८०

बहिनको खबर नहीं कि कोई लिख लेगा। उन्हें बाह्य प्रसिद्धिका जरा भी भाव नहीं। धर्मरतन हैं, भगवती हैं, भगवतीस्वरूप माता हैं। (उनके यह वचन) आनन्दमेंसे निकले हैं। भाषा मीठी आ गयी है। ५२.

❖

बहिन अभी तक गुप्त थीं। अब ढँका नहीं रहेगा-छिपा नहीं रहेगा। उनके वचन तो भगवानकी वाणी है, उनके घरका कुछ नहीं है-दिव्यध्वनि है। बहिन तो महाविदेहसे आयी हैं। यह वचनामृत लोग पढेंगे, मनन करेंगे, तब खयाल आयेगा कि यह पुस्तक कैसी है! अकेला मक्खन है। ५३.

❖

ता.१९-२-७८

(बहिनकी) यह वाणी तो आत्माके अनुभवमें-आनन्दमें रहते-रहते आ गयी है। हम भगवानके पास पूर्वभवमें थे। बहुत ऊँची बात है। इस समय यह बात और कहीं नहीं है। बहिन (चंपाबेन) तो संसारसे मर गयी हैं। अपूर्व बात है बापू! ५४.

❖

बहिनकी पुस्तक तो ऐसी बाहर आ गई है कि मेरे हिसाबसे तो सबको भेंट देना चाहिये। बहुत सादी-बालक जैसी भाषा; संस्कृत भाषा नहीं। बहुत जोरदार गंभीर बातें उसमें हैं। ५५.

❖

अहाहा! यह ऐसी चीज लोगोंके भाग्यसे बाहर आ गई। इसमें पुकारा है आत्माको। ऊपर बहिनका फोटो है-बहुत अच्छा; शांत-शांत !! ५६.

❖

बहिन तो बहिन ही हैं; उनके जैसा दूसरा कोई नहीं है। यहाँ हमें कहाँ कुछ छिपा रखना है ? बहिन तो अजोड़ हैं, अकेली ही हैं। हमारे कुछ खानगी-गुप्त है नहीं। ५७.

❖

बहिनकी पुस्तकमें बहुत संक्षिप्त और माल-माल है। अन्यमतियोंको भी पसन्द आये ऐसा है। ...अरे ! उसमें तो तेरी महिमा और बढ़ाईकी बातें हैं। मुनियोंकी कैसी बात ली है ! - 'मुनियोंको बाहर आना वह बोझ लगता है।' यह पुस्तक बाहर आई वह बहुत ही अच्छा हुआ। अंदर थोड़ेमें बहुत सी बातें है। ५८.

❖

बहिन तो एक अद्‌भूत रतन पैदा हुई हैं। शक्ति अद्‌भुत है। अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमें उन्हें हैं (बाहरकी) कुछ पड़ी ही नहीं। हिन्दुस्तानमें उनके जैसा कोई आत्मा नहीं है। यह पुस्तक बाहर आई इसलिये कुछ खबर पड़ती है। ५९.

❖

चंपाबेन अर्थात् कौन ? ! उनका अनुभव, उनका ज्ञान, समता अलौकिक है। ...स्त्रीकी देहमें आ गई है। परन्तु अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दकी मौजमें पड़ी हैं; उसमेंसे वाणी निकली है। -यह, उनकी वाणीका प्रमाणपना है। ६०.

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :– भेदज्ञानके अभ्यासमें विचार आते हैं कि– 'मैं देह नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, वाणी नहीं हूँ,' तथा ऐसे जो विचार आते हैं वह भी मैं नहीं हूँ, तो अब आगे क्या करना ? वह समझानेकी कृपा करें।

समाधान :– अभ्यास तो भेदज्ञानका ही करनेका है। 'यह मैं नहीं, यह मैं नहीं'– ऐसे कहकर पर और विभावसे छुड़वाना है। तथापि भेदज्ञानके अभ्यासमें स्थिर नहीं रहा जा सके तो शास्त्र–स्वाध्याय करे, फिरसे भेदज्ञानका अभ्यास करे, निराला रहनेका अभ्यास करे, यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञाता हूँ–ऐसा अभ्यास करना है।

मैं चैतन्य शाश्वत हूँ। मेरा विनाश नहीं होता। मैं निर्मल हूँ, मैं पवित्र हूँ.–ऐसा अभ्यास पहले तो विकल्पसे होता है, ऊपर–ऊपरसे होता है; परन्तु यथार्थ अभ्यास तो अंतरकी गहराईसे हो वह है, गहराई पहलेसे नहीं आती। अनादिसे बाहरका अभ्यास है और अशुभमें पड़ा है, उससे विमुख होनेके लिये बारम्बार अभ्यास करना। समझ न पड़ती हो तो सत्संग, स्वाध्याय, श्रवण करना; परन्तु भेदज्ञानके अभ्यासके पश्चात् ही स्वानुभूति होनेका प्रसंग आता है। सच्ची श्रद्धापूर्वक भेदज्ञानकी धारा प्रगट हो तो उसमें यथार्थ स्वानुभूति आनेका प्रसंग बनता है।

भेदज्ञान हुए बिना सच्ची अनुभूति होती ही नहीं। जो शरीरको पृथक् न माने, स्वयं अंतरमें भिन्न तत्त्व है उसे नहीं पहचाने अर्थात् जो भिन्न तत्त्व है उसे अंतरसे भिन्न किये बिना सच्ची स्वानुभूति नहीं होती। विकल्प मन्द हो जाएँ जिससे शान्ति जैसा कुछ भासे, कुछ चमत्कार दिखाई दे; परन्तु अंतरसे विकल्प टूट कर जो आनंद आये वह नहीं आता। विकल्पोंको रोके, दबा दे परन्तु जब तक अंतरसे पृथक् नहीं होता तब तक सच्चा आनन्द नहीं आता।

(स्वानुभूतिदर्शन–४७४)

❖

प्रश्न :– आप हमें दिव्य शक्तिशाली मंत्र दीजिये। जिसे रटते रहनेसे कल्याण हो जाय।

समाधान :– मैं तौ एक ही मंत्र देती हूँ। एक ही कहना है कि ज्ञायकका करना। 'ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ' वह महामंत्र है। उसका रटन निरंतर करने योग्य है। उसे तत्त्वस्वभाव द्वारा पहचानना सो मूल (भूत कार्य) है। वह न हो तबतक उसका रटन करना कि 'मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ'। 'यह शरीर सो मैं नहीं। विभावकी समस्त पर्यायें वे मेरा स्वरूप नहीं'।

'मैं ज्ञायक हूँ... मैं ज्ञायक हूँ' इसप्रकार बारम्बार चैतन्यगृहकी ओर दृष्टि देना है, वहीं परिणतिको ले जाना है। वह करनेसे–उस पर ध्यान देनेसे–विकल्प टूटकर निर्विकल्प शुद्धात्मतत्त्व प्रगट होता है। यही प्रयास करने जैसा है।

जीवनको चैतन्यमय बना देना, यही कर्तव्य है। मैं देहमय नहीं हूँ, रागमय नहीं हूँ, वेदनामय नहीं हूँ। जिस ध्येयसे ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा ग्रहण की है वही ध्येय रखना। एक चैतन्यमय ही जीवन बनाना वही कर्तव्य है।

अंतरमें चैतन्यकी स्वानुभूति हो वह जुदी बात है, परन्तु स्वानुभूति न हो तबतक भावनामय जीवन बना लेना। चैतन्यके बिना चैन न पड़े ऐसा जीवन बना देना। चैतन्यके चिन्तवन बगैर, चैतन्यकी वार्ता बगैर, चैतन्यके श्रवण बगैर,

चैतन्यके स्वाध्याय बगैर कहीं भी चैन न पड़े वैसा जीवन बना देना, बस! एक ही भावना एवं उसीका पुरुषार्थ हो तब स्वानुभूति होती है। चैतन्यदेव प्रगट हो सो तो जुदी ही बात है; तथापि वह न हो तो उसकी भावनामय जीवन बने वह भी अच्छा है। अन्य सबसे दृष्टि हटाकर चैतन्यमय जीवन बनाना। बाह्यमें कहीं रुकने जैसा नहीं है। बस, एक चैतन्यमें ही आनन्द है। उसीमें ज्ञान है। ऐसे ज्ञायकदेवका स्मरण करना, साथ ही देव–शास्त्र–गुरुको हृदयमें रखना।

(स्वानुभूतिदर्शन–४७५)

❖

प्रश्न :– ज्ञानीको भगवानकी भक्तिके भाव आते हैं तब उनकी परिणति क्या काम करती है?

समाधान :– सम्यग्दृष्टि उस समय भी निराला ही रहता है। उत्कृष्ट भक्ति करता हुआ दिखाई देता हो, तथापि उस भक्तिके भावमें एकत्व नहीं होता; उस क्षण भी वह निराला रहता है। यह भक्तिके रागके विकल्प आते हैं वे पृथक् और मैं उनसे पृथक्–ऐसी भेदज्ञानकी धारा वर्तती है। **(स्वानुभूतिदर्शन–४७६)**

❖

प्रश्न :– तो वे भक्तिके भाव निषेधात्मक हैं ?

समाधान :– हाँ, वे सहज निषेधात्मकरूपसे रहते हैं, व्यवहारसे आदरणीय हैं, द्रव्यदृष्टिसे (निश्चयसे) निषेधात्मक हैं, दोनों धारायें साथ चलती हैं। ज्ञानी द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतासे उनका निषेध करते हैं और व्यवहारसे आदर करते हैं। भक्तिकालमें भक्ति भी उत्कृष्ट आये तथापि निषेधपनेका भाव सहज रहताहै। **(स्वानुभूतिदर्शन–४७७)**

❖

प्रश्न :– भक्तिके भाव आये तब हमें क्या करना चाहिये ? वह समझाइये।

समाधान :– श्रद्धा तो यथार्थ ही करना है। परंतु भक्तिका प्रसंग आये तब 'यह भक्ति सो मैं नहीं हूँ' ऐसा विचारता रहे, तो उसे भक्ति उत्पन्न होनेमें–भक्तिके भाव उठनेमें–मुश्किल होती है। कृत्रिम करने जाये तो नहीं होती। भक्तिके समय भक्ति भी करता जाये और 'मैं यह नहीं, मैं यह नहीं' ऐसे विकल्प भी करता रहे तो उसे भक्ति उत्पन्न होना मुश्किल है, उसे भक्ति नहीं आती। ज्ञानीको तो सहज धारा वर्तती है। **(स्वानुभूतिदर्शन–४७८)**

करुणासागर पूज्य भाईश्री शशीभाई के ८३वें जन्म-जयंती महोत्सव पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री का आगामी ८३वां जन्म जयंति महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी–३, दि.१४–१२–१५ से मार्गशीर्ष सुदी–८, दि.१८–१२–१५ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ओडियो एवं वीडियो सी.डी. प्रवचन, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतक कार्यक्रम रहेंगे और दि.१७–१२–१५ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा।

इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु ट्रस्ट के कार्यालय में यहाँ पर पहुँचने की तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजनकी समुचित व्यवस्था हो सके।

कार्यक्रम स्थल :– श्री शशीप्रभु साधना–स्मृति मंदिर, प्लोट नं.१९४२–बी, शशीप्रभु चोक, रूपाणीसर्कल के पास, भावनगर–३६४००१

संपर्क :– श्री सत्सुख प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर–३६४००१

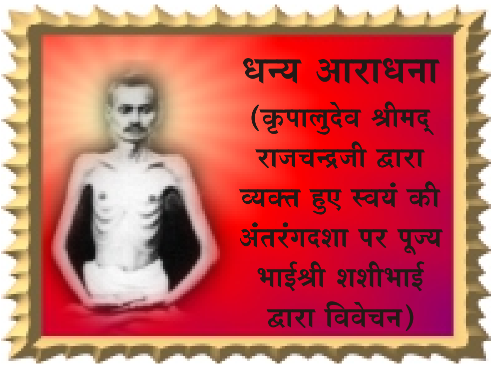

४२७

बंबई, माघ सुदी ९, गुरु, १९४९

'सत्संगका लक्ष्य हमारे आत्मामें रहता है, तथापि उदयाधीन स्थिति है, और वह अभी ऐसे परिणाममें रहती है कि आप मुमुक्षुजनके पत्रकी पहुँच मात्र विलंबसे दी जाती है। चाहे जैसी स्थितिमें भी अपराधयोग्य परिणाम नहीं है।'

जो-जो मुमुक्षु ज्ञानीपुरुषका आश्रय चाहते हैं, ऐसे मुमुक्षुजीवोंको सत्संग प्राप्त होना, यह इस कालमें महाभाग्यरूप गिनना चाहिये। ऐसे सत्संगका लक्ष्य उनके आत्मामें बसा है, फिर भी बाह्यमें उदयाधीन स्थिति है; और उसी समय अंतरंगमें स्वरूप प्रत्ययी अंतर्मुख पुरुषार्थयुक्त-उदासीन भावरूप परिणाम चलते हैं कि जिसके कारण सत्संग योग्य ऐसे मुमुक्षुजनके पत्रकी पहुँच सिर्फ लिखी जाती है। (विस्तारसे प्रत्युत्तर-विस्तारपूर्वक उपरोक्त कारणोंसे लिख नहीं सकते।) और वह भी लिखनेमें विलंब हो जाता है।

उपरोक्त स्थितिमें परमार्थवृत्तिकी मुख्यताके कारण, मुमुक्षुओंको अन्याय होता है फिर भी वैसे परिणाम अपराधयोग्य नहीं हैं, ऐसा स्पष्टीकरण किया है। उसका कारण यह है कि - आत्माकार स्थिति विशेष रहती होनेसे, इस प्रकार रहते हुए निर्दोषता और पवित्रता विशेष प्रकट होते हो, वहाँ ज्ञानीपुरुषको व्यावहारिक कार्योंका बंधन नहीं होता। क्योंकि एक न्यायसे वे व्यवहारसे पर हो चुके हैं, इसलिये उनके बाह्य वर्तनमें दिखता अन्याय वास्तवमें अपराधयोग्य नहीं है। ऐसा जानने योग्य है।

❖

४३१

बंबई, फागुन सुदी ७, गुरु, १९४९

'हमारा अभिप्राय कुछ भी देहके प्रति हो तो वह मात्र एक आत्मार्थके लिये ही है, अन्य अर्थके लिये नहीं। दूसरे किसी भी पदार्थके प्रति अभिप्राय हो तो वह पदार्थके लिये नहीं, परन्तु आत्मार्थके लिये है। वह आत्मार्थ उस पदार्थकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें हो, ऐसा हमें नहीं लगता। 'आत्मत्व' इस ध्वनिके सिवाय दूसरी कोई ध्वनि किसी भी पदार्थके ग्रहण-त्यागमें स्मरण योग्य नहीं है। अनवकाश आत्मत्व जाने बिना, उस स्थितिके बिना अन्य सर्व क्लेशरूप है।'

इस पत्रमें कृपालुदेवने अपने अभिप्राय विषयक स्पष्टता की है। उनका अभिप्राय सिर्फ आत्मार्थ ही है, फिर प्रासंगिक बात वह चाहे देहकी हो चाहे किसी भी अन्य पदार्थकी हो, परन्तु सर्वत्र एक आत्मार्थका ही अभिप्राय है। अपने आत्मार्थकी स्पष्टता अनुभवदृष्टिसे की है कि किसी भी पदार्थकी प्राप्ति-अप्राप्ति विषयक हमारा आत्मार्थ नहीं है। किसी भी पदार्थके ग्रहण-त्यागमें एक आत्मत्व अर्थात् 'मैं तो सिर्फ ज्ञाता ही हूँ।' इस ध्वनिके अलावा दूसरा कोई ध्वनि होगा ऐसा हमें या किसी अन्यको स्मरण करने योग्य नहीं है। हमारे परिणमनमें तो उक्त प्रकारसे अनवकाशरूपसे सिर्फ आत्मत्व ही रहा करता है। इस स्थितिके अलावा, हमें तो अन्य सर्व क्लेशरूप है।

❖